'...मैं कासे कहूं पीर अपने जिया की...'

आपस की बात

राजकुमार केसवानी

तो बहुत लंबी-चौड़ी लिस्ट लगेगी, जो यहां मुमकिन नहीं है। बस थोड़े से शुरुआती दौर के गीत याद करते हैं। और यूं भी आप लोग कोई कम थोड़े ही जानते हैं। अब जैसे पिछली बार 'सैर कराएं तुमको पाकिस्तान की' में फिल्म 'दीदार' में मैंने लिख दिया कि दिलीप कुमार के बचपन का रोल मास्टर रतन ने किया, तो कैसे आपने फ़ौरन मुझे आगाह किया कि वह रोल परीक्षित साहनी ने किया था। है न सही बात। लाड़ में आने का नतीजा यही होता है कि बस रौ में बहकर ग़लती कर जाते हैं और फिर कहते हैं 'सॉरी जी सॉरी'। सो सॉरी। ख़ैर, अब ज़रा मदन जी के शुरुआती दौर की एक मुख़्तसिर-सी लिस्ट देखें।

'हमें हो गया तुमसे प्यार, बेदर्दी बालमा, हो बेदर्दी बालमा' और **'जब आने वाले आते हैं, फिर आ के चले क्यों जाते हैं'** (मदहोश 1951), **'मेरे पिया से कोई जा के कह दे, जीवन का सहारा तेरी याद है'** और **'मेरा क़रार ले जा, मुझे बेक़रार कर जा, दम भर को प्यार कर जा'** (आशियाना 1952), **'कहा भी न जाए पिया कहा भी न जाए, अपने थे जो हुए वो पराए'** (निर्मोही 1952), **'हमारे बाद महफ़िल में अफ़साने बयां होंगे, बहारें हमको ढूंढ़ेंगी, न जाने हम कहां होंगे'** (बाग़ी 1953), **'मेरा छोटा-सा देखो ये संसार है'**, **'इस दुनिया में सब चोर-चोर'**, **'शराबी जा-जा-जा'** और **'क़दर जाने ना, ओ क़दर जाने ना, मोरा बालम, बेदर्दी, क़दर जाने ना'** (भाई-भाई 1956)।

मद्रास के ए.वी.एम. बैनर में बनी इस फिल्म से ही मदन मोहन को मदन मोहन बनने के रास्ते मिले। ख़ासकर 'क़दर जाने ना' ने तो ऐसी धूम मचाई कि सिर्फ़ इसी एक गीत की ख़ातिर लोगों ने कई-कई बार फिल्म देखी।

इस गीत को लेकर बेगम अख़्तर जैसी महान हस्ती से एक बात सुनवाऊं? लीजिए - 'उनकी फिल्म 'भाई-भाई' रिलीज़ हुई थी। उन्हीं दिनों मैं दिल्ली आई थी। मेरे साथ मुजदिद नियाज़ी और एकानंद एक बड़े फ़नकार हैं मौसीकी के और बहुत से लोग जमा थे। मैंने पहली बार रेडियो पर उनकी फिल्म का ये गाना सुना, तो मत पूछिए क्या हालत हुई। मैंने उसी वक़्त मदन जी को बंबई ट्रंककॉल किया और फोन के ऊपर पूरे 18 मिनट या 22 मिनट तक ये गाना हम लोग सब बारी-बारी से सुनते रहे उनकी ज़बान से'।

अब मैं और क्या बताऊं। इससे बड़ा कॉम्प्लीमेंट और क्या हो सकता है। वह भी बेगम अख़्तर जैसी हस्ती से।

कॉम्प्लीमेंट तो सी. रामचंद्र और एस.डी.बर्मन, जिन दोनों के साथ मदन जी असिस्टेंट भी रहे, भी दिल खोलकर देते थे और नौशाद जैसे गुणी व्यक्ति उनकी एक ग़ज़ल के बदले अपना ज़िंदगी भर का काम न्यौछावर करने की बात करते थे, लेकिन मदन मोहन के जीवन में हर शाम **'फिर वही शाम, वहीं ग़म, वही तन्हाई है'** वाली होती थी। उनकी अधिकतर फिल्में बड़ी हिट नहीं हो पाईं। मैं जिस घड़ी मदन जी के संगीत की बात कर रहा हूं एक साथ कई आवाज़ें मुझे मदन जी की बेक़दरी की याद दिला रही हैं। इनमें सबसे गहरी टीस वाली आवाज़ है उनके बेटे संजीव कोहली की।

दिसंबर 1997 की 'फिल्मफेयर' पत्रिका में उनका एक लेख है। इस लेख की शुरुआत में ही वे कहते हैं- **'...उन्होंने हमें हमेशा रिकॉर्डिंग स्टूडियोज़ से दूर रखा। शायद इसलिए कि वे ख़ुद संगीत की इस दुनिया से मोहभंग की स्थिति में आ चुके थे... आज यही बात सोचकर मेरे मन में कड़वाहट पैदा होती है कि मेरे पिता को अपने तमाम गुणों के बावजूद अपने मन की पीड़ा को मुस्कराहटों के पीछे छिपाना पड़ा... आज तमाम लोग उनके हुनर की दाद देते हैं, तारीफ़ें करते हैं। मैं हैरान हूं यह सब उन्होंने तब क्यों नहीं कहा, जब मेरे पिता जीवित थे। मेरे पिता अक्सर मेरी मां से कहते थे, इस फिल्म इंडस्ट्री ने मुझे मेरा हक़ नहीं दिया। उनको कभी भी बड़े बैनर की फिल्में नहीं मिलीं...'**।

इसी जगह आकर जी चाहता है कि फिल्म 'प्यासा' से साहिर लुधियानवी की एक लाइन दुहरा दूं- **'ये बस्ती है मुर्दा परस्तों की बस्ती'**। जीते को हक़ नहीं मिलता, मरते को सजदे मिलते हैं। ज़रा सोचिए, मदन मोहन की यह हालत हुई, तो फिर हम-आप कौन? उनकी ज़िंदगी में एक वक़्त वो भी आया, जब 70 वाले दौर में लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और आर.डी. बर्मन की आंधी में बड़े-बड़े दरख्त ज़मींदोज़ हो गए। मदन मोहन जैसे इंसान के लिए रिकॉर्डिंग को स्टूडियो ही खाली न थे।

गर्दिश के मारे भावुक मदन मोहन ने बोतल का ऐसा सहारा लिया कि उनके लिवर ने उनका साथ छोड़ दिया। 14 जुलाई 1975 को बंबई के नानावती अस्पताल में इस दुनिया को अलविदा कह दिया।

यहां एक बात और भी कहना चाहता हूं। आर.डी. बर्मन और एल.पी. की जोड़ी के बारे में। इनकी आंधी भी जिस दिन थम गई, उस दिन मदन मोहन और इनमें कोई अंतर नहीं बचा था। फिल्मी दुनिया ने इन दोनों के महान योगदान को भुलाकर कहीं अकेला छोड़ दिया। इनका दर्द, ख़ासकर आर.डी. का दर्द दिल में टीस की तरह उभरता रहता है। सो उसकी बात जिस दिन करूंगा, उस दिन के बाद कई दिन तक होश में न आऊंगा।

मैं इस जगह तक पहुंचकर जान चुका हूं कि आप सोच रहे होंगे कि अभी तक मैंने 'आख़िरी दांव', 'पॉकेटमार', 'देख कबीरा रोया', 'अदालत', 'वो कौन थी', 'मेरा साया', 'अनपढ़' और 'आप की परछाइयां' के संगीत को तो छुआ तक नहीं है। बिल्कुल सही। आज का खेल इधर ही खल्लास करना पड़ेगा, बाबा। बात बड़ी और स्पेस कम है न। सो अगली बात फिर इसी छूटे हुए सिरे से शुरू करेंगे मदन जी की। उनके संगीत की, उनकी शख़्सियत की और उनकी बकाया चीज़ों की। अगली बार कोशिश करेंगे कि थोड़ी मीठी-मीठी बात करें। तब तक आप भी मदन मोहन के संगीत वाले कैसेट या सी.डी. निकालकर फिर से सुनें। बहरहाल, फिल्म 'दस्तक' (1970) के एक गीत का मुखड़ा ज़रूर याद दिलाऊंगा। मदन मोहन की आवाज़ में- **'... माई री, मैं कासे कहूं पीर अपने जिया की, माई री...'**

और...

अरे यार, इतनी कड़वी-कड़वी सच्चाइयों के बाद और क्या बचता है कहने को? अरे हां! एक बात तो कहनी ही पड़ेगी न- मिलते हैं अगले हफ़्ते।

क्या यार, फालतू है ये भी। बस एक आदत-सी पड़ गई है, ऐसा बोलने की, वरना आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं। अगले हफ़्ते फिर से होएंगी- दिल की बात- आपस की बात।

जय-जय।

पता: ई-101/15, शिवाजी नगर, भोपाल (मप्र)
rkeswani100@gmail.com